15,17 नवम्बर 2006
जिनवाणी, 133

# दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों में प्रतिक्रमण विवेचन

*डॉ. अशोक कुमार जैन*

दिगम्बर परम्परा में भी प्रतिक्रमण का विधान है। आचार्य वट्टकेर विरचित मूलाचार ग्रन्थ के सातवें अधिकार में षडावश्यकों का १९० गाथाओं में विवेचन है। अनगार धर्मामृत आदि ग्रन्थों में भी प्रतिक्रमण का प्रतिपादन है। दिगम्बर परम्परा के श्रमणाचार में तो प्रतिक्रमण का विधान है ही, श्रावकाचार में भी प्रावधान है। डॉ. जैन ने अपने आलेख में संक्षेप दिगम्बर-परम्परा में मान्य प्रतिक्रमण के स्वरूप से परिचित कराया है। *-सम्पादक*

जैन-परम्परा में आचार्यों द्वारा आचार-विषयक अनेक ग्रन्थों की रचना की गयी। उनमें श्रमण और श्रावक की चर्या के संबंध में अनेक नियमों का विधान निरूपित है। श्रमणाचार के षडावश्यकों में प्रतिक्रमण का भी विस्तार से वर्णन उपलब्ध है।

## प्रतिक्रमण स्वरूप

मूलाचार में प्रतिक्रमण के स्वरूप के बारे में लिखा है-

दव्वे खेत्ते काले भावे य कयावराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचकायेण पडिक्कमणं।। -मूलाचार १/२६

निन्दा और गर्हापूर्वक मन-वचन-काय के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के विषय में किये गये अपराधों का शोधन करना प्रतिक्रमण है।

अनगार धर्मामृत में लिखा है-

मिथ्या मे दुष्कृतमिति प्रायोऽपायैर्निराकृतिः।
कृतस्य संवेगवता प्रतिक्रमणमागसः।। -अनगार धर्मामृत ७/४७

संसार से भयभीत और भोगों से विरक्त साधु के द्वारा किये गये अपराध को- ''मेरे दुष्कृत मिथ्या हो जावें, मेरे पाप शांत हों''- इस प्रकार के उपायों के द्वारा दूर करने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

## प्रतिक्रमण के अंग

प्रतिक्रमण के तीन अंग हैं-

**१. प्रतिक्रामक-** प्रमाद आदि से लगे हुए दोषों से निवृत्त होने वाला अथवा जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव विषयक अतिचारों से निवृत्त होता है वह (साधु) 'प्रतिक्रामक' कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **प्रतिक्रमण**- पंचमहाव्रतादि में लगे हुए अतिचारों से निवृत्त होकर महाव्रतों की निर्मलता में पुनः प्रविष्ट होने वाले जीव के उस परिणाम का नाम 'प्रतिक्रमण' है। अथवा जिस परिणाम से चारित्र में लगे अतिचारों को हटाकर जीव चारित्र शुद्धि में प्रवृत्त हो तो वह परिणाम प्रतिक्रमण है।

३. **प्रतिक्रमितव्य**- भाव, गृह आदि क्षेत्र, दिवस, मुहूर्त आदि दोषजनक काल तथा सचित्त, अचित्त एवं मिश्र रूप द्रव्य जो पापास्रव के कारण हों वे सब 'प्रतिक्रमितव्य' हैं।

## प्रतिक्रमण के भेद

*प्रतिक्रमण के मूलतः भाव प्रतिक्रमण एवं द्रव्य प्रतिक्रमण ये दो भेद हैं-*

१. **भाव प्रतिक्रमण**- मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और अप्रशस्त योग इन सबकी आलोचना अर्थात् गुरु के सम्मुख अपने द्वारा किये अपराधों का निवेदन करना, निन्दा और गर्हा के द्वारा प्रतिक्रमण करके पुनः दोष में प्रवृत्त न होना भाव प्रतिक्रमण है। भावयुक्त श्रमण जिन अतिचारों के नाशार्थ प्रतिक्रमण सूत्र बोलता और सुनता है वह विपुल निर्जरा करता हुआ सभी दोषों का नाश करता है।

२. **द्रव्य प्रतिक्रमण**- उपर्युक्त विधि से जो अपने दोष परिहार नहीं करता और सूत्रमात्र सुन लेता है, निन्दा-गर्हा से दूर रहता है उसका 'द्रव्य प्रतिक्रमण' होता है, क्योंकि विशुद्ध परिणाम रहित होकर द्रव्यीभूत दोष युक्त मन से जिन दोषों के नाशार्थ प्रतिक्रमण किया जाता है, वे दोष नष्ट नहीं होते। अतः उसे 'द्रव्य प्रतिक्रमण' कहते हैं। द्रव्य सामायिक की तरह द्रव्य प्रतिक्रमण के भी आगम और नोआगम आदि भेद-प्रभेद किये जा सकते हैं।

## निक्षेप दृष्टि से प्रतिक्रमण के भेद

मूलाचार में कहा गया है-

णामट्ठवणा दव्वे खेत्ते काले तहेव भावे य।
एसो पडिक्कमणगे णिक्खेवो छव्विहो णेओ।। -मूलाचार, ६१४

निक्षेप दृष्टि से प्रतिक्रमण के छह भेद हैं-

१. **नाम प्रतिक्रमण**- अयोग्य नामोच्चारण से निवृत्त होना अथवा प्रतिक्रमण दण्डक के शब्दों का उच्चारण करना नाम प्रतिक्रमण है।

२. **स्थापना प्रतिक्रमण**- सराग स्थापनाओं से अपने परिणामों को हटाना स्थापना-प्रतिक्रमण है।

३. **द्रव्य प्रतिक्रमण**- सावद्य द्रव्य-सेवन के परिणामों को हटाना 'द्रव्य प्रतिक्रमण' है।

४. **क्षेत्र प्रतिक्रमण**- क्षेत्र के आश्रय से होने वाले अतिचारों से निवृत्त होना क्षेत्र प्रतिक्रमण है।

५. **काल प्रतिक्रमण**- काल के आश्रय या निमित्त से होने वाले अतिचारों से निवृत्त होना काल प्रतिक्रमण है।

६. **भाव प्रतिक्रमण**- राग, द्वेष, क्रोधादि से उत्पन्न अतिचारों से निवृत्त होना भाव प्रतिक्रमण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## कालिक आधार पर प्रतिक्रमण के भेद

मूलाचार के रचनाकार लिखते हैं-

पडिकमणं देवसियं रादिय इरियापथं च बोधव्वं।
पक्खिय चादुम्मासिय संवच्छरमुत्तमट्ठं च।। -मूलाचार ६१५

अर्थात् प्रतिक्रमण दैवसिक, रात्रिक, ऐर्यापथिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, सांवत्सरिक और उत्तमार्थ इन सात प्रकार का जानना चाहिए।

१. **दैवसिक-** सम्पूर्ण दिन में हुए अतिचारों की आलोचना प्रत्येक संध्या में करना।

२. **रात्रिक-** सम्पूर्ण रात्रि में हुए अतिचारों की प्रतिदिन प्रातः आलोचना करना।

३. **ईर्यापथ प्रतिक्रमण**- आहार, गुरुवन्दन, शौच आदि जाते समय षट्काय के जीवों के प्रति हुए अतिचारों से निवृत्ति।

४. **पाक्षिक**- सम्पूर्ण पक्ष में लगे हुए दोषों की निवृत्ति के लिए प्रत्येक चतुर्दशी या अमावस्या अथवा पूर्णिमा को उनकी आलोचना करना।

५. **चातुर्मासिक-** चार माह में हुए अतिचारों की निवृत्ति हेतु कार्तिक, फाल्गुन एवं आषाढ़ माह की चतुर्दशी या पूर्णिमा को विचारपूर्वक आलोचना करना।

६. **सांवत्सरिक-**वर्ष भर के अतिचारों की निवृत्ति हेतु प्रत्येक वर्ष आषाढ़ माह के अन्त में चतुर्दशी या पूर्णिमा के दिन चिन्तनपूर्वक आलोचना करना।

७. **औत्तमार्थ-** यावज्जीवन चार प्रकार के आहारों से निवृत्त होना' औत्तमार्थ प्रतिक्रमण' है। यह संलेखना-संथारा से सम्बद्ध प्रतिक्रमण है, जिसके अन्तर्गत जीवनपर्यन्त सभी प्रकार के अतिचारों का भी प्रतिक्रमण हो जाता है।

उपर्युक्त सात भेदों के अतिरिक्त मूलाचार के संक्षेप प्रत्याख्यान-संस्तरस्तव नामक तृतीय अधिकार में आराधना (मरण समाधि) काल के तीन प्रतिक्रमणों का भी उल्लेख हुआ है- १. सर्वातिचार प्रतिक्रमण २. त्रिविध आहार-त्याग प्रतिक्रमण ३. उत्तमार्थ प्रतिक्रमण।

मूलाचार वृत्ति में आचार्य वसुनन्दि ने आराधनाशास्त्र के आधार पर योग, इन्द्रिय, शरीर और कषाय इन चार प्रतिक्रमणों का भी उल्लेख किया है।

## प्रतिक्रमण की विधि

सर्वप्रथम विनयकर्म करके शरीर, आसन आदि का पिच्छिका से प्रमार्जन तथा नेत्र से शुद्धि करनी चाहिए। तदनन्तर अंजलि जोड़कर ऋद्धि आदि गौरव तथा जातिमद आदि सभी तरह के मद छोड़कर व्रतों में लगे हुए अतिचारों को नित्य प्रति दूर करना चाहिए। आज नहीं, दूसरे या तीसरे दिन अपराधों को कहूँगा, इत्यादि रूप में टालते हुए कालक्षेप करना ठीक नहीं, अतः जैसे-जैसे अतिचार उत्पन्न हों, उन्हें अनुक्रम से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलोचना, निन्दा और गर्हा पूर्वक विनष्ट करके पुनः उन अपराधों को नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण करते हैं, उसी तरह असंयम, क्रोध आदि कषायों एवं अशुभ योगों का प्रतिक्रमण करना चाहिए। इस तरह दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण के नियमों को पूर्ण कर धर्मध्यान और शुक्लध्यान करना चाहिए। आलोचना- भक्ति करते समय कायोत्सर्ग, प्रतिक्रमण-भक्ति करने में कायोत्सर्ग, वीर भक्ति में कायोत्सर्ग और चतुर्विंशति तीर्थंकर-भक्ति में कायोत्सर्ग- प्रतिक्रमण काल में ये चार कृतिकर्म करने का विधान है।

## प्रतिक्रमण की परम्परा

चौबीस तीर्थंकरों के संघ में प्रतिक्रमण में विधान की परम्परा का मूलाचारकार ने उल्लेख करते हुए लिखा है कि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर ने अपने शिष्यों को अतिचार लगे या न लगे, किन्तु दोषों की विशुद्धि के लिए समय पर प्रतिक्रमण करने का उपदेश दिया है। मध्य के बाईस तीर्थंकरों अर्थात् द्वितीय अजितनाथ से लेकर तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने अपराध होने पर ही प्रतिक्रमण करने का उपदेश दिया और कहा कि- जिस व्रत में स्वयं या अन्य साधु को अतिचार हो उस दोष के विनाशार्थ उसे प्रतिक्रमण करना चाहिए, क्योंकि मध्यवर्ती बाईस तीर्थंकरों के शिष्य दृढ़ बुद्धिशाली, एकाग्रमन वाले, प्रेक्षापूर्वकारी, अतिचारों की गर्हा एवं जुगुप्सा करने वाले तथा शुद्ध चारित्रधारी होते थे, किन्तु प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शिष्य चंचल चित्तवाले, मोही तथा जड़बुद्धि वाले होते हैं। अतः ईर्यापथ, आहारगमन, स्वप्न आदि में किसी भी समय अतिचार होने या न होने पर भी उन्हें सभी नियमों एवं प्रतिक्रमण को करने का विधान किया है। इसी विधान के अनुसार आज तक सभी मुनियों एवं आर्यिकाओं को नित्य प्रतिक्रमण करने की परम्परा निरन्तर चली आ रही है। प्रतिक्रमण आवश्यक के अन्तर्गत ही मूलाचार में दस मुण्डों का भी विवेचन मिलता है। पाँच इन्द्रियमुण्ड तथा मनोमुण्ड, वचोमुण्ड, कायमुण्ड, हस्त एवं पादमुण्ड। इस प्रकार इन दस मुण्डों से आत्मा पाप में प्रवृत्त नहीं होती, अतः उस आत्मा को मुण्डधारी कहते हैं।

श्रमणाचार में प्रतिक्रमण का अपना विशिष्ट स्थान है। कतिपय श्रावकाचार ग्रन्थों में भी प्रतिक्रमण का स्वरूप एवं विधि का वर्णन मिलता है। आचार्य अमितगति के अनुसार सायंकाल संबंधी प्रतिक्रमण करते समय १०८ श्वासोच्छ्वास वाला कायोत्सर्ग किया जाता है। प्रातःकालीन प्रतिक्रमण में उससे आधा अर्थात् चौवन श्वासोच्छ्वास वाला कायोत्सर्ग कहा गया है। अन्य सब कायोत्सर्ग सत्ताईस श्वासोच्छ्वास काल प्रमाण कहे गये हैं। संसार के उन्मूलन में समर्थ पंच नमस्कार मंत्र का नौ बार चिन्तन करते हुए सत्ताईस श्वासोच्छ्वासों में उसे बोलना या मन में उच्चारण करना चाहिए। बाहर से भीतर की ओर वायु को खींचने को श्वास कहते हैं। भीतर की ओर से बाहर वायु के निकालने को उच्छ्वास कहते हैं। इन दोनों के समूह को श्वासोच्छ्वास कहते हैं। श्वास लेते समय 'णमो अरहंताणं' पद और श्वास छोड़ते समय 'णमो सिद्धाणं' पद बोलें। पुनः श्वास लेते समय 'णमो आयरियाणं' पद और श्वास छोड़ते समय 'णमो उवज्झायाणं' पद बोलें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः पंचम पद के आधे भाग को श्वास लेते समय और 'सव्वसाहूणं' श्वास छोड़ते समय बोलना चाहिए। इस विधि में नौ बार णमोकार मंत्र के उच्चारण के चिन्तन में सत्ताईस श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल का एक जघन्य कायोत्सर्ग होता है। मध्यम कायोत्सर्ग का काल चौवन श्वासोच्छ्वास प्रमाण और उत्कृष्ट कायोत्सर्ग का काल एक सौ आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कहा गया है। श्रावकों को प्रतिदिन दो बार प्रतिक्रमण, चार बार स्वाध्याय, तीन बार वन्दना और दो बार योगभक्ति करना चाहिए।

इस प्रकार आचार्यों ने श्रमण और श्रावकों दोनों के लिए प्रतिक्रमण विधान का वर्णन किया है। हमें दोषों की शुद्धि के लिए नित्य प्रति इसको करके अपने जीवन को पावन बनाना चाहिए।

*-सह आचार्य, जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्म-दर्शन विभाग*
*जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org